तद्भव

आधुनिक रचनाशीलता पर केंद्रित विशिष्ट संचयन

अंक-1, वर्ष-13
पूर्णांक-50, वर्ष-26
जनवरी-2025

संपादक
अखिलेश

लेजरटाइप सेटिंग
मोहिनी शर्मा
दिल्ली

मुद्रण
ग्रैंड प्रिंटिंग प्रेस
गोमती नगर, लखनऊ

मूल्य
इस अंक की एक प्रति : तीन सौ रुपये
संस्थाओं के लिए : चार सौ पचास रुपये
वार्षिक सदस्यता : पांच सौ रुपये (डाक खर्च सहित)
संस्थाओं के लिए : आठ सौ रुपये (डाक खर्च सहित)
विदेश के लिए : सत्तर डालर
आजीवन सदस्यता : दस हजार रुपये

सम्पर्क
18/201, इंदिरा नगर,
लखनऊ - 226016
उत्तर प्रदेश
दूरभाष : 6388234196
ई-मेल : akhilesh_tadbhav@yahoo.com

समस्त कानूनी विवादों का न्यायक्षेत्र लखनऊ, उत्तर प्रदेश होगा।

स्वामी-संपादक-प्रकाशक-मुद्रक अखिलेश कुमार द्वारा 18/201, इंदिरा नगर, लखनऊ, उ.प्र. से प्रकाशित
और ग्रैंड प्रिंटिंग प्रेस, 337 विजयीपुर, विशेष खंड, गोमती नगर, लखनऊ से मुद्रित

अनुक्रम

जीवन

अस निबहूर देसू-VI विश्वनाथ त्रिपाठी 1

शताब्दी

अदम्य जिजीविषा के कथाकार : अमरकांत अजय वर्मा 10

लेख

शामिलात, उत्तर वृद्धि और विपनिवेशीकरण नए चाल में वामपंथ? आदित्य निगम 23 / डिजिटल दौर में साहित्य राजकुमार 43

मुलाकात

'हिंदी नवजागरण में अंतर्विरोध थे और राष्ट्रीय आंदोलन में भी' फ्रंसेस्का ओर्सिनी के साथ वीरेंद्र यादव की बातचीत 54

कहानियां

अमरनाथ की मां जितेंद्र भाटिया 71 / सजाएं देवी प्रसाद मिश्र 81 / अराजकता में स्थिरता यानी अफरातफरी में ताकत हाइंस वरनर वेस्लर 102

विशेष

साहित्यिक दुनिया का अंडरवर्ल्ड : एक अधूरी जीवनी बन्नी नारायण 109

कविताएं

अब तुम उड़ सकते हो... राजेश जोशी 118 / कविताएं अनामिका 121 / कविताएं श्रीप्रकाश शुक्ल 129 / सात कविताएं सौम्य मालवीय 137 / कविताएं आस्तीक वाजपेयी 145/ कविताएं आनंद बलराम 153

लंबी कविता

काली मुसहर का बयान हरे प्रकाश उपाध्याय 163

चुनौतियां

हिंसा अथवा युद्ध मानव प्रकृति में अंतर्जात नहीं है नंदकिशोर आचार्य 168 / हिमालय : चुनौतियों का घर शेखर पाठक 173 / कृत्रिमता और सच्चाई : एआई की रहनुमाई गरिमा श्रीवास्तव 189 / जाति की आर्थिकी और उससे बना हुआ समाज रमाशंकर सिंह 204

लंबी कहानी

आतिशबाजी यतीश कुमार 213

वृत्तांत

शेषकथा ममता कालिया 241

संस्मरण

कुछ न समझे खुदा करे कोई समीक्षा ठाकुर 338

मूल्यांकन

इक्कीसवीं सदी के पच्चीस साल और हिंदी उपन्यास विनोद तिवारी 357 / वर्तमान सदी में कहानी : संकट और आशंकाएं प्रियम अंकित 378 / कथेतर की सदी पल्लव 393

तद्भव का यह अंक आपके सम्मुख है। यूं तो हर बार नया अंक आपको सौंपते हुए हार्दिक खुशी का एहसास रहता है मगर इस बार एक अलग तरह की भावनाएं भीतर हैं। जैसा कि आप देख रहे हैं कि यह तद्भव का 50वां अंक है। कह कर इतराया जा सकता है कि तद्भव का स्वर्णजयंती अंक आपके हाथों में है। इस संदर्भ में यह भी कि जब मौजूदा मुश्किल दौर में पत्र पत्रिकाओं के प्रकाशन को अबाध जारी रख पाना अत्यंत कठिन होता जा रहा है, अनेक महत्वपूर्ण पत्रिकाओं का छपना बीच रास्ते बंद हो जाना इस तथ्य की पुष्टि भी करता है, ऐसे कठिन समय में तद्भव के 50वें अंक का प्रकाशन मुमकिन हो सका है। संयोग है, हम इक्कीसवीं शताब्दी के भी 25वें साल में हैं। सन् 1999 में हमने पहला अंक प्रस्तुत किया था जो शिखर कथाकार श्रीलाल शुक्ल पर एकाग्र था और यह भी संयोग देखिए, श्रीलाल शुक्ल भी यदि हमारे बीच आज होते तो यह उनका 100वां साल चल रहा होता। हमारे कहने का आशय है कि उत्साहित होने और उत्सवी होने के अनेक अवसर एक साथ उपस्थित हैं। शायद इसलिए भी कि जब हमारे रोजाना के जीवन में प्रसन्न हो पाने के ज्यादा मौके सुलभ न हो पा रहे हों तो इसी तरह खुशियां हासिल करने, जश्न मनाने के तर्क तलाशे जाते हैं वना आज हम तटस्थ होकर मूल्यांकन करें तो पाते हैं, दुखी और निराश होने की अधिक वजहें और सचाइयां दरपेश हैं।

एक वजह तो यही कि इन दिनों जैसे हालात हैं, कहा जा सकता है, आज मनुष्यता के पास कोई विराट स्वप्न नहीं है। थोड़ा थोड़ा बेहतर होता जाए, ज्यादा से ज्यादा इतनी ही चाहत बची हुई है लेकिन इस तरह नहीं कि कोई नई दुनिया रची जाए जो आज से भिन्न ही नहीं विपरीत भी हो। निश्चय ही स्वप्नहीनता की यह स्थिति किसी शासन व्यवस्था के बहुत अनुकूल होती है और व्यवस्थाएं इसके लिए प्रयास करती हैं। क्योंकि मनुष्यता के विराट सपने साकार होने के लिए लोगों में बेचैनी को जन्म देते हैं और वह बेचैनी जिस ऊर्जा का निर्माण करती है, वह प्रायः विद्रोही होती है। यह अनयास नहीं है कि दुनिया की तमाम क्रातियों, विप्लवों की पृष्ठभूमि में कोई न कोई विराट सपना सक्रिय रहा है। सोचने की बात है, जिस समाज के पास भविष्य की किसी खूबसूरत संरचना का ख्याल नहीं रहेगा उसका भविष्य कैसा होगा!

आधुनिक इतिहास की सबसे महान उपलब्धि के रूप में लोकतंत्र को रेखांकित किया जा सकता है। लोकतंत्र के मूल्यों ने जनता को इतना लुभाया है अथवा यूं कहें यह

जनाकांक्षाओं के मंथन से निकला अमृत है अतः इसे नष्ट कर पाना किसी भी सत्ता के लिए सुरक्षित रास्ता नहीं है। इसलिए राजशाही की तरह सत्ता का संचालन करने वाली ताकतें भी लोकतंत्र का विरोध नहीं करतीं बल्कि उसका आभासी समर्थन करती हुई वास्तविक अर्थ में लोकतांत्रिक प्रणाली और मूल्यों को बदशक्ल करती हैं, उसके एक एक पुर्जे को विकृत करती हैं। यही नहीं लोकतंत्र को उसकी परंपरा से विच्छिन्न करके महज अपने वर्तमान के वक्त में महदूद कर दिया जाता है। इससे होता यह है कि उपलब्धियां एक सातत्य का परिणाम नहीं वरन किसी चमत्कार की भांति स्वयंभू लगें। इस चमत्कार पर लोग यकीन करें इसके लिए लोगों के विवेक, तर्कशीलता का इस कदर हरण कर लो कि वे निरर्थक और त्याज्य लगने लगें।

आज हमें साफ दिखता है कि जिस समाज में हैं उसमें साहित्य की, विचारों की जगह कम होती जा रही है। ये मनुष्यता की वे अमूल्य निधियां हैं जिन्होंने पूंजी की शक्ति के सामने उसके जन्म से ही लगातार कड़ी चुनौती प्रस्तुत की। उसके दोषों, विरोधाभासों का न केवल खुलासा किया बल्कि वैकल्पिक सुंदर दुनिया की तस्वीरें भी रचीं। ये तस्वीरें इतनी दिलकश तथा प्रभावशाली थीं और नैतिक थीं कि महाशक्तिशाली पूंजीवाद के अथक प्रयासों, षड्यंत्रों के बावजूद दमकती रहीं और पूंजीवाद को विचलित करती रहीं। इसीलिए दुनिया में वैभव को विपन्नता ने, भोग को त्याग ने, आरामतलबी को कर्मठता ने, युद्ध को शांति ने, तानाशाही को लोकतंत्र ने, अज्ञान को ज्ञान ने कभी सिर नहीं ऊंचा करने दिया। इसी श्रृंखला में आगे कहना है कि अग्रगामी और गंभीर वैचारिकी को भावोच्छ्वास भरी छद्म बुद्धि के जरिए, देशकाल के सच को बयान करने वाले श्रेष्ठ रचनाकारों के साहित्य को सस्ते मनोरंजन से भरे बाजारू साहित्य के जरिए पूंजी के शक्तिकेंद्रों ने शिकस्त देने की काफी कोशिशें कीं लेकिन कामयाब नहीं हो सके। मगर इन दिनों नई रणनीति के अंतर्गत काम हो रहा है : सत्य को झूठ से नहीं छाया सत्य से पराजित करो। जैसे किसी देश की अर्थव्यवस्था को नष्ट करना है तो बेपनाह नकली मुद्रा भर दो। इतना ही नहीं, नकली मुद्रा को असली से भी ज्यादा कीमती सिद्ध करो। तो आज साहित्य को उसकी जगह से पदच्युत करने के लिए कॉर्पोरेट पूंजी साहित्य के स्थान पर साहित्य जैसा दिखने वाले लेखन को बढ़ावा दे रही है। महत्वपूर्ण लेखकों के बजाय गैर लेखकों को महान लेखक की तरह प्रचारित और प्रस्तुत कर रही है। इसी तरह इतिहास के समानांतर नया इतिहास लिखने की सामर्थ्य नहीं है और सार्थक इतिहास बर्दाश्त नहीं है तो लोगों के इतिहासबोध को ही गडमड कर दो। मिथक को इतिहास और इतिहास को मिथक की तरह प्रसारित करो जिससे दोनों की विश्वसनीयता और सार्थकता का लोप हो जाए। विचार की काट के लिए विचार नहीं है तो लंतरानी को विचार के रूप में लोकप्रिय बनाओ, ज्ञान नहीं है तो मूर्खता को भक्ति और श्रद्धा का मुखौटा पहना दो। इन सबका परिणाम है, एक विशाल जनसंख्या दुखी होने की जगह प्रसन्नता की अभिव्यक्ति कर रही है। प्रतिरोध करने की जगह समर्थन कर रही है। रोना है तो हंस रही है। चीखना है तो चुप्पी साध ले रही है। बीमारी को इलाज समझ रही है।

दरअसल नए जमाने के पूंजीवाद ने बीसवीं सदी के अंतिम दशक में एक ब्रह्मास्त्र तैयार किया बाजारवाद। यूं बाजार तो सभ्यता के विकास के वक्त से हैं और उसी के साथ उपभोक्ता भी। जाहिर है उपभोक्ता होंगे तभी बाजार का अस्तित्व भी होगा लेकिन 'उपभोक्ता' मनुष्य की मुख्य पहचान पहले नहीं हुआ करता था। और यह जो बाजारवाद है, मनुष्य को महज एक उपभोक्ता में सीमित कर देना इसका मकसद है। नब्बे के दशक से ही इसकी परियोजना यह रही है कि सामाजिकों की प्रत्येक पहचान को विनष्ट करके उसे महज उपभोक्ता संस्कृति का नागरिक बना दिया जाय। उपभोक्ता संस्कृति इंसान को आत्मकेंद्रित और लालची बनाती है। कहां पर और कैसे दो पर एक फ्री मिल रहा है यह फिक्र महत्वपूर्ण हो जाती है बनिस्बत इसके कि बहुत से हैं बल्कि अधिकतर हैं जिनको एक भी नहीं मिल रहा है। हम कह सकते हैं कि उपभोक्ता संस्कृति ने लोगों को इस तरह के मनुष्य के रूप में ढाला, रूपांतरित किया जो खुद और खुद के परिवार के बाहर देश दुनिया, विभिन्न मानव समुदायों के दुखों, संघर्षों से विमुख हुआ। बाहर का, अपने से इतर का संसार जब आपकी चिंताओं से बेदखल होता है तो आप अपने भीतर को, अंदर निवास करने वाली तमाम भावनाओं और सुंदरताओं को देख सकने की क्षमताओं को खोने लगते हैं। हो सकता है आपको एहसास हो कि आप विकास और सभ्यता की अति उन्नत अवस्था में हैं मगर आप वास्तव में पतनशील रास्ते पर चल रहे होते हैं।

वैसे तो गिनने गिनाने के लिए दुखों, संकटों की लंबी फेहरिस्त है जिनमें से कुछ पर हम पहले के अंकों में चर्चा कर चुके हैं और कुछ पर आने वाले अंकों में करेंगे। हमारी तो इच्छा है कि 50वें अंक के प्रकाशन के जश्न के बहाने एक आयोजन करें जिसमें इन मसलों पर कार्यक्रम हों लेकिन देखें ऐसा कर पाना संभव हो भी पाता है? बहरहाल अभी तो बस इतना ही कि यह अंक आपके लिए प्रस्तुत है। इस बार हमने पुस्तकों की समीक्षाएं नहीं दी हैं, अगले अंक से इसका सिलसिला पुनः शुरू होगा।

50 अंक तक की तद्भव की जारी यात्रा में उसे जो प्यार, सहयोग, सम्मान मिला वह अद्वितीय है। ऐसी चीजें ही कुछ करने और तमाम बाधाओं के बावजूद करते रहने की प्रेरणा तथा शक्ति देती हैं। हमने काफी कुछ ऐसा किया जिसे करना चाहा था किंतु बहुत कुछ नहीं कर सके, शायद भविष्य में संभव हो सके।

हम यहां तक जो पहुंचे हैं उसमें हमारे युवा रचनाकारों की विशेष भूमिका रही। उनकी अनेक ऐसी शानदार रचनाओं को प्रकाशित करने का अवसर मिला जिनसे उन लेखकों को कीर्ति मिली और तद्भव का भी मान बढ़ा। इस मौके पर हम उन दिग्गज शख्सियतों का स्मरण करना जरूरी समझते हैं जिनकी आभा ने तद्भव को निखारा। नामवर सिंह, कृष्णा सोबती, श्रीलाल शुक्ल, राजेंद्र यादव, मन्नु भंडारी, कमलेश्वर, मनोहर श्याम जोशी, रवींद्र कालिया, दूधनाथ सिंह, पी. सी. जोशी, तुलसीराम आदि अब हमारे बीच नहीं हैं लेकिन उनसे मिला रचनात्मक आशीष आज भी तद्भव को ऊर्जस्वी बनाता है। महाश्वेता देवी, गुरुदयाल सिंह और हबीब तनवीर को भी याद करना होगा जिन्होंने अपने लिखे को अपनी

मूल भाषा से भी पहले तद्भव को प्रकाशित करने का गौरव दिया। समाज विज्ञान के कई विद्वानों ने हमारे आग्रह पर अंग्रेजी में ही लेखन करने की रिवायत से अलग हट कर हिंदी में तद्भव के लिए लिखा, उन सभी के प्रति हम कृतज्ञ हैं।

तद्भव अपने कुछ शुभचिंतकों के सहयोग और व्यक्तिगत प्रयास से निकलने वाली पत्रिका है। बेशक इस प्रकार की संरचना में कोई पत्रिका निकालना अनिश्चित और जोखिम का काम है, प्रारंभ में कई ने आगाह भी किया था लेकिन हमने कोशिश की और कामयाब हुए। इन सबके बावजूद, दर्प न माना जाए, हमने वैचारिक समझौते नहीं किए। रचनाओं की गुणवत्ता के मामले में भी यही कोशिश रही। इसके चलते हमारे कई मित्र नाराज भी हुए, धमकियां दीं और गालियां भी। हमें उनसे शिकायत नहीं है, हां अफसोस जरूर है कि उनको हमारे काम की वजह से क्षोभ हुआ। आगे भी हम भरपूर जतन करते रहेंगे कि तद्भव से जिस रचनात्मक उत्कृष्टता और वैचारिक दृढ़ता की अपेक्षा की जाती है उस कसौटी पर वह खरी उतरे।

पिछले कुछ माह में हमने जिन साहित्यिक विभूतियों को खो दिया है उनकी स्मृति को नमन।

अखिलेश

अस निबहूर देसू-VI

विश्वनाथ त्रिपाठी

जवाहरलाल नेहरू पर बात करना किसी एक व्यक्ति पर बात करना नहीं है; एक युग और इस महादेश के अज्ञातप्राय गांव तक के अनपढ़ से अनपढ़ आदमी के हृदय में बसे हुए एक मिथक के बारे में बात करना है। मुझे याद है कि मैं बच्चा था और जब मैं बच्चा होने की बात कर रहा हूँ तो यह मानिए कि मेरी पैदाइश 1931 ईस्वी की है और यह बात 1935 ईस्वी के आसपास की होगी। उन दिनों मेरी बहन झूला झूलते समय एक गाना गाती थी—*गांधी जी दूल्हा बने, सहबाला जवाहरलाल, चरखवा चालू रहे। कहीं टूटे न चरखवा के तार चरखवा चालू रहे।* इस तरह लोकगीत में मैंने जवाहरलाल नेहरू का नाम सबसे पहले सुना था। न जाने कितनी किंवदंतियां भी उनके बारे में सुनी थीं, जैसे, उनका कपड़ा पेरिस में धुलता है हिंदुस्तान में नहीं धुलता है। यह भी कि जब वह लंदन में पढ़ते थे तो एक बार प्रिंस ऑफ वेल्स और उनकी कार आपस में टकरा गई। प्रिंस ऑफ वेल्स ने कहा कि अब वह कार कैसे खरीदेंगे? नेहरू जी ने कहा कि हम कार खरीदेंगे अपनी और तुम्हारी भी। सुना जाता था कि जवाहरलाल नेहरू इतने पैसे वाले थे कि जो आनंद भवन है उसके आसपास की सड़क पर शोर न हो इसलिए रबड़ की सड़क बनवा रखी है।

जवाहरलाल नेहरू एक मिथक की तरह थे। वह गरीब से गरीब आदमी के दिल में बसे हुए थे। इसलिए उनके बारे में बात करना सिर्फ एक राजनेता के बारे में, एक प्रधानमंत्री के बारे में बात करना नहीं है। मैंने कई रूपों में उनको देखा था। कई रूप कहना तो ठीक नहीं है लेकिन कई बार देखा था उनको, कई स्थितियों में देखा। जब उनको बचपन में देखता था तब सबसे अच्छी उनकी वह फोटो लगती थी जिसमें वो धोती कुर्ता पहनते थे, सदरी

और टोपी लगाए रहते थे, साथ में दुपट्टा या शाल ओढ़े हुए। उनके नाम से जुड़ी नेहरू कट और जवाहर कट सदरी मशहूर थी। बाद में उन्होंने धोती कुर्ता पहनना छोड़ दिया था। धोती कुर्ता में मैंने उनको दुबारा तब देखा जब गांधी जी की हत्या के बाद वे इलाहाबाद में संगम पर उनकी अस्थियां प्रवाहित कर रहे थे। अपने आंसू पोछ रहे थे। जवाहरलाल नेहरू की जो छवि मुझे अक्सर याद आती है वह बड़ी मार्मिक है। 1954 में जो कुंभ लगा था उसमें बहुत बड़ी त्रासदी हो गई थी। भगदड़ में हजारों आदमी मर गए थे। मैं भी कुंभ मेला देखने के लिए बनारस से आया था और अपने मित्र के यहां, उनके पिता आर्मी में अफसर थे, ठहरा हुआ था। मैं अनजान था कि इतनी बड़ी त्रासदी हो गई है। जब मैं भीड़ में था तो देखा जीप पर चढ़े हुए जवाहरलाल नेहरू आ रहे हैं। जवाहरलाल नेहरू जहां जाते थे वहां वातावरण उल्लासमय हो जाता था। हंसते, मुस्कराते या बहुत सतर्क रूप में दिखलाई पड़ते थे। लेकिन उस वक्त ऐसा नहीं था। मैंने इतना गंभीर, इतना चिंतित चेहरा नेहरू का जीवन में दुबारा फिर कभी नहीं देखा। चेहरे पर तमाम लकीरें गहरी पड़ी हुई दिखलाई पड़ी रहीं थीं। उन्होंने खबर सुन ली थी कि इतने लोग भगदड़ में मारे गए हैं।

1949 ईस्वी में भारत के प्रथम राष्ट्रपति डॉ. राजेंद्र प्रसाद जब शोभायात्रा की बग्घी पर चढ़ कर निकले तो वह अतीत की सारी समृद्धि व परंपरा का द्योतक था। हिंदू धर्म की अनेक बातें, महान मुगल साम्राज्य की समृद्धि, ब्रिटिश साम्राज्य की विशालता और स्वतंत्र भारत की संभावनाएं इन सबका जैसे योग मालूम पड़ता था वह। यद्यपि कई लोग यह कहते हैं कि प्राचीन भारत में भी गणतंत्र की व्यवस्था थी। जो यह गणतंत्र था वह भारतीय परंपरा में रहा है पर उसका एक रूप इंग्लैंड या अमेरिका का या अन्य देशों में भी रहा है जिसका प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू आदर करते थे। वह इतिहास के पाठक थे। इतिहास में बहुत रुचि लेते थे।

ब्रिटिश की संसदीय प्रणाली, अमेरिका की राष्ट्रपति प्रणाली के साथ साथ सोवियत संघ में जो समाजवादी सत्ता थी उसकी भी कई बातों को वे पसंद करते थे, इसलिए भारत के दक्षिणपंथी नेहरू को लेफ्टिस्ट कहते हैं, वह लेफ्टिस्ट नहीं थे, मौका आने पर कम्युनिस्ट पार्टी की बखिया उधेड़ देते थे। लेकिन जो सोवियत संघ का विकास था उससे वह आकृष्ट थे। 26 जनवरी के दिन जो रिपब्लिक डे की परेड होती थी वह उसी तर्ज पर शुरू हुई थी जैसी 9 मई को सोवियत संघ में होती थी क्रांति के उत्सव के रूप में।

यद्यपि स्वतंत्र भारत खंडित होकर सामने आया था पर अपनी संभावनाओं की अंतर्वृत्ति में अलग था। पाकिस्तान मुस्लिम देश बना, किंतु हिंदुस्तान हिंदू देश नहीं बना। इसका सबसे बड़ा कारण इस देश पर गांधी और नेहरू का प्रभाव था। जवाहरलाल नेहरू के बारे में आजकल तरह तरह की बातें की जाती हैं। जब भारत स्वतंत्र हुआ तब मैं 16 वर्ष का था और 14 वर्ष की उम्र तक आरएसएस का कट्टर स्वयं सेवक रहा था जो गांधी जी को कायर और जवाहरलाल नेहरू को अहितकर मानता था। हम अक्सर यही उक्ति दोहराया करते थे जो गलत ढंग से पटेल के नाम से प्रसिद्ध थी। जबकि पटेल और नेहरू में अच्छा संवाद था। उनके मतभेद थे पर दोनों एक दूसरे को बहुत मानते थे। दोनों एक पार्टी के थे। पटेल ने नेहरू को प्रधानमंत्री बनाने में सहयोग किया था।

जवाहरलाल नेहरू अंदर से जनतांत्रिक थे और जनतांत्रिक की सबसे बड़ी पहचान होती है कि वह अपने विरोध को सहन कर सकता है। जवाहरलाल नेहरू भावुक थे लेकिन अपने स्वभाव से सामान्य जनता की बड़ी चिंता करते थे और स्वयं भावुक होते हुए भी भावुकता को नहीं पसंद करते थे। मैं अपने स्वयंसेवक के दिनों में बलरामपुर में था तो नेहरू जी वहां